

नियमसार, गाथा १०९ का कलश है। १५४।

आत्मा ह्यात्मानमात्मन्यविचलनिलयं चात्मना पश्यतीत्थं ।

यो मुक्तिश्रीविलासानतनुसुखमयान् स्तोककालेन याति ।

सोऽयं वन्द्यः सुरेशैर्यमधर-ततिभिः खेचरैर्भूचरैर्वा

तं वन्दे सर्ववन्द्यं सकलगुणनिधिं तद्गुणापेक्षयाहम् ॥१५४॥

[श्लोकार्थः] इस प्रकार जो आत्मा, आत्मा को आत्मा द्वारा आत्मा में... आहाहा! आत्मा है, वह वीतरागस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है तो वह वीतराग और आनन्दस्वभाव द्वारा ज्ञात हो, ऐसा है। जो इसका स्वभाव है, वह उसकी पर्याय में प्रगट होने पर उससे ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! आत्मा आत्मा को आत्मा द्वारा... करण। आत्मा में—आधार। अविचल निवासवाला देखता है,... आहाहा! ध्रुवस्वरूप चैतन्य पर्याय आत्मा की, उसे देखती है कि यह तो अविचल है। ध्रुव, वह कभी चलित नहीं होता ऐसा पर्याय उसे देखती है।

वह अनंग-सुखमय (अतीन्द्रिय आनन्दमय) ऐसे मुक्तिलक्ष्मी के विलासों को अल्प काल में प्राप्त करता है। आत्मा के आनन्द को वीतरागस्वभाव द्वारा, उसके द्वारा जो आत्मा को जानता है, वह अल्प काल में मुक्ति को पाता है। जैसा उसका स्वभाव मुक्त है, मुक्तस्वभाव के अवलम्बन से मुक्तिपने की पर्याय प्रगट करता है। आश्रय लेकर अर्थात् उसका परिणाम अन्ततः मुक्तदशा आती है। राग, पुण्य और व्यवहार को तो यहाँ याद भी नहीं किया। आहाहा!

यह तो चार बोल लिये हैं। आत्मा... कर्ता; आत्मा को... कर्म; आत्मा द्वारा... करण; आत्मा में... आधार अविचल निवासवाला... चलित नहीं, ऐसा स्थान है। यह स्थायी स्थान है। निर्जरा अधिकार में आता है न? निर्जरा अधिकार में। स्थायी स्थान है। रहनेवाले का रहने का स्थान है। आहाहा! रहना हो, उसे रहने का स्थान है। ऐसे जिसे स्थिर होना हो तो स्थिर होने का वह स्थान है। आहाहा! ऐसा मार्ग।

(अतीन्द्रिय आनन्दमय) ऐसे मुक्तिलक्ष्मी के विलासों को (वह जीव) अल्प काल में प्राप्त करता है। दूज उगी तो पूर्णिमा होगी ही; इसी प्रकार आत्मज्ञान हो तो केवलज्ञान होगा ही। यह बात यहाँ ली है। आत्मज्ञान हो, वह वस्तु का ज्ञान। पूर्ण... पूर्ण स्वरूप। राग और पर्याय की क्रिया से भिन्न है, ऐसा जो पूर्ण स्वरूप, उसे अनुभव करने से अल्प काल में मुक्ति को पाता है। यह मुक्ति का मार्ग है।

वह आत्मा सुरेशों से,... सुर अर्थात् देवों के इन्द्रों से। सुरेश अर्थात् सुर अर्थात् देव, उनके ईश अर्थात् इन्द्र। उन सुरेन्द्रों से पूजनीय है। इन्द्र भी उसे पूजते हैं। जिसे बत्तीस लाख विमान और सामग्री का पार नहीं, ऐसे देव भी जिसे पूजते हैं, ऐसा कहते हैं। संयमधरों की पंक्तियों से,... आहाहा! और संयमधारक साधु की पंक्ति की श्रेणी से... आहाहा! पूजते हैं। साधु की पंक्ति। आहाहा! उस समय सच्चे साधु न माने। साधु की पंक्ति है, वह भगवान को नमन करती है। पहले देव लिये, पश्चात् संयमधरों की पंक्ति ली, पश्चात् खेचरों से (-विद्याधरों से)... खेचर-आकाश में चलनेवाले। (-विद्याधरों से) तथा भूचरों से... ये जमीन पर चलनेवाले (-भूमिगोचरियों से) वंद्य है। आहाहा! ऐसे वन्दनीय पुरुष ऐसे वन्दनीय है। भूचरों, खेचरों, मनुष्यों और सुरेश-देवों के भी जो इन्द्रों उनसे वे पूजते हैं।

मैं उस सर्ववन्द्य... मुनिराज कहते हैं मैं उस सर्ववन्द्य... सर्व को वन्दन करनेयोग्य। सकलगुणनिधि... सकलगुण की निधि / सागर / निधान। आहाहा! सकलगुणनिधि... वह निधान है। अनन्त गुण का वह निधान है। उस आत्मा को... आहाहा! (-सर्व से वन्द्य ऐसे समस्त गुणों के भण्डार को)... अर्थ किया। सर्ववन्द्य सकलगुणनिधि को (-सर्व से वन्द्य ऐसे समस्त गुणों के भण्डार को)... आहाहा! उसके गुणों की अपेक्षा से... 'तद्गुणलब्धये' (तत्त्वार्थसूत्र में) आता है न? उनके गुणों की अपेक्षा रखकर वन्दन

करता हूँ। मुझे दूसरा कुछ नहीं चाहिए। आहाहा! वह वन्दन करते हैं, इसलिए गुण होते हैं—ऐसा प्रश्न नहीं है। मात्र मेरा विकल्प उत्पन्न हुआ है, परन्तु मेरी आशा उनके जो गुण हैं, वे गुण मुझे चाहिए। इस वन्दन से वे गुण प्रगट होते हैं, ऐसा नहीं है परन्तु वन्दन में मेरा भाव, जैसे उनके केवलज्ञानादि गुण हैं, वे गुण मुझे प्रगट हों, यह मेरे वन्दन के फल का भाव है। आहाहा!

यह प्रश्न चलता था न? 'तद्गुणलब्धये' इस ओर से प्रश्न आया था कि देखो, 'तद्गुणलब्धये' कहा है। उनके गुणों की प्राप्ति के लिये वन्दन करता हूँ। उनकी स्तुति वन्दन करे तो उनके गुण प्राप्त होते हैं। 'तद्गुणलब्धये' नहीं? क्या श्लोक है वह?

**मोक्षमार्गस्य नेतारं भेतारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये ॥**

श्लोक आता है। इसका अर्थ वे लोग निमित्त का करते थे कि देखो! भगवान को वन्दन करने से मोक्ष मिलता है और भगवान को वन्दन करने से मोक्ष की भावना है और गुण की भावना है। भगवान को वन्दन करना, उसमें और विकल्प क्या आया? यह बड़ी चर्चा है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, उनके गुणों को मैं वन्दन करता हूँ। जो उनके गुण हैं, वे मुझे प्रगट हों, मुझमें है, इस अपेक्षा से मैं वन्दन करता हूँ। आहाहा! शब्द के अर्थ में अन्तर करे। वे कहते हैं, उनके गुण को वन्दन करने से उनके जो गुण हैं, वैसे गुण अपने में प्रगट होते हैं। तो तुम कहते हो वन्दन करते हुए, वह तो विकल्प है। परद्रव्य को वन्दन करना, वह विकल्प है, इसलिए यह बात ऐसी नहीं है, (ऐसा वे) कहते हैं। तद्गुण-उनकी गुण की प्राप्ति के लिये ऐसा कहते थे। ऐसी बात है। यहाँ तो कहते हैं, उनके गुण की प्राप्ति के लिये मैं वन्दन करता हूँ। गुण की प्राप्ति मेरे लिये मुझमें होती है, उसके लिये मैं अपेक्षा से पर को वन्दन करता हूँ। आहाहा!

श्लोक-१५५

(मंदाक्रांता)

आत्मा स्पष्टः परम-यमिनां चित्त-पङ्केज-मध्ये
ज्ञान-ज्योतिःप्रहत-दुरित-ध्वान्त-पुञ्जः पुराणः ।
सोऽतिक्रान्तो भवति भविनां वाङ्मनोमार्गमस्मि-
न्नारातीये परमपुरुषे को विधिः को निषेधः ॥१५५॥

एवमनेन पद्येन व्यवहारालोचनाप्रपञ्चमुपहसति किल परमजिनयोगीश्वरः ।

(वीरछन्द)

जिसने ज्ञान ज्योति के द्वारा पाप तिमिरघन किया विनाश ।
परम यमी के चित्तकमल में वह पुराण आत्मा स्पष्ट ॥
संसारी जीवों के वचन तथा मन से है वह अतिक्रान्त ।
परम निकट इस परम पुरुष में विधि-निषेध की कैसी भ्रान्ति ? ॥१५५॥

[श्लोकार्थः] जिसने ज्ञानज्योति द्वारा पापतिमिर के पुंज का नाश किया है और जो पुराण (-सनातन) है, ऐसा आत्मा परमसंयमियों के चित्तकमल में स्पष्ट है । वह आत्मा संसारी जीवों के वचन-मनोमार्ग से अतिक्रान्त (-वचन तथा मन के मार्ग से अगोचर) है । इस निकट परमपुरुष में विधि क्या और निषेध क्या ? ॥१५५॥

इस प्रकार इस पद्य द्वारा परम जिनयोगीश्वर ने वास्तव में व्यवहार-आलोचना के प्रपञ्च का उपहास किया है ।

श्लोक -१५५ पर प्रवचन

१५५ (श्लोक) ।

आत्मा स्पष्टः परम-यमिनां चित्त-पङ्केज-मध्ये
ज्ञान-ज्योतिःप्रहत-दुरित-ध्वान्त-पुञ्जः पुराणः ।

१. उपहास=हँसी; मजाक; तिरस्कार; खिल्ली ।

सोऽतिक्रान्तो भवति भविनां वाङ्मनोमार्गमस्मि-
न्नारातीये परमपुरुषे को विधिः को निषेधः ॥१५५॥

आहाहा! [श्लोकार्थः] जिसने ज्ञानज्योति द्वारा पापतिमिर के पुंज का नाश किया है... पाप शब्द से यह पुण्य और पाप दोनों। आहाहा! परन्तु ज्ञानज्योति द्वारा - चैतन्य की ज्योति, जलहल ज्योति सत्ता, उसके द्वारा पापतिमिर का नाश किया है। भाषा से समझाना हो तो ऐसा ही आवे न? नहीं तो एक जगह ३४-३५ गाथा में ऐसा आता है कि राग का नाश कर्ता, वह नाममात्र है, परमार्थ से कर्ता नहीं है। किस अपेक्षा से (कहा) है? जिस समय जो समझ में संक्षिप्त भाषा में कहना हो, तो लम्बा-लम्बा करे। उसे वन्दन में जो विकल्प है, वह नहीं परन्तु उसके स्वयं को... ऐसा लम्बा-लम्बा कहने की अपेक्षा, उनके वन्दन से हमें लाभ होता है, ऐसी भाषा बोलते हैं। आहाहा! वहाँ ऐसा कहा है, राग और विकार का नाश कर्ता, वह भी आत्मा में नाममात्र कथन है। क्योंकि परमार्थ से भगवान् आत्मा रागरूप हुआ ही नहीं न! द्रव्यस्वभाव, वस्तुस्वभाव, चैतन्यतत्त्व उस रागरूप हुआ नहीं। हुआ नहीं तो वह रागरूप का नाश किस प्रकार करे? आहाहा! समझ में आया? नाममात्र कथन है, परन्तु यहाँ समझाना है, तब यह बात ले तो कठिनाई पड़ती है।

ज्ञानज्योति द्वारा पापतिमिर के पुंज का नाश किया है और जो पुराण (सनातन) है ऐसा आत्मा... सनातन है। आहाहा! द्रव्य और गुण जैसे सत् है, सत् है, सत्ता है, वैसे उस काल की उनकी पर्याय भी सत् है, सत्ता है, उसका वह काल है। आहाहा! जैसे द्रव्य-गुण को अपेक्षा नहीं, वैसे पर्याय को अपेक्षा नहीं। समझ में आया? ऐसा आत्मा परमसंयमियों के चित्तकमल में स्पष्ट है। पुराण सनातन है, ऐसा आत्मा। सनातन ध्रुव। परमसंयमियों, परम। इन्द्रिय का दमन, अतीन्द्रिय में स्थित है, ऐसे परमसंयमियों के चित्तकमल में स्पष्ट है। अन्दर। आहाहा!

वह आत्मा संसारी जीवों के वचन-मनोमार्ग से अतिक्रान्त (-वचन तथा मन के मार्ग से अगोचर) है। लो! वह आत्मा संसारी जीवों के वचन-मनोमार्ग से अतिक्रान्त... पर को वन्दन करना, वह विकल्प है, पुण्य है। आहाहा! भाषा क्या कही जाए? मनोमार्ग से अतिक्रान्त है... आहाहा! संसारी जीवों के वचन-मनोमार्ग से अतिक्रान्त (-वचन तथा मन के मार्ग से अगोचर) है। मन से भी ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! इस निकट

परमपुरुष में... उस निकट परमपुरुष में विधि क्या और निषेध क्या ? आचार्य ने आश्चर्य किया है कि ऐसा है और ऐसा नहीं, यह दो उसमें क्या ? वह है ही । आहाहा ! जैसे द्रव्य-गुण सनातन हैं । उन्हें कोई अपेक्षा नहीं है । बस, उनकी पर्याय वर्तमान है, वह तो वह त्रिकाल सत् है, यह तो वर्तमान सत् है । दोनों सत् हैं । उन्हें किसी की अपेक्षा नहीं है । आहाहा ! ऐसे आत्मा में विधि अर्थात् यह है और यह नहीं - यह क्या ? पर से नहीं, ऐसा तो उसमें अपना भाव है । स्व से है, ऐसा भी अपना भाव है । अपने से है, ऐसा भी एक भाव है ; पर से नहीं, ऐसा भी अपना अपने कारण से भाव है । समझ में आया ? आहाहा ! ऐसे निज परमात्मा में, निकट परमपुरुष में... आहाहा ! विधि क्या और निषेध क्या ? यह करना और यह छोड़ना, यह दो उसे कहाँ लागू पड़ते हैं ? आहाहा !

मुमुक्षु : आत्मा में दो धर्म नहीं या दो विकल्प नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दो विकल्प नहीं हैं । विकल्प नहीं है और जहाँ बन्ध तथा मोक्ष भी नहीं है वहाँ । आत्मा में बन्ध और मोक्ष तो पर्याय है । वह पर्याय वस्तु में कहाँ है ? यहाँ तो विधि अर्थात् यह विधि - इस प्रकार से करना और इस प्रकार से नहीं करना, ऐसा उसमें कहाँ है ? आहाहा ! अर्थकार करते हैं ।

इस प्रकार इस पद्य द्वारा परम जिनयोगीश्वर ने... परम जिनयोगीश्वर ने वास्तव में व्यवहार-आलोचना के प्रपंच का उपहास किया है । देखा ? व्यवहार आलोचना की मशकरी की है । है ? आहाहा ! प्रायश्चित्त लेना, आलोचना करना और यह करना और वह करना... यह सब विकल्प है । उस व्यवहार आलोचना की तो मशकरी की है, ऐसा कहते हैं । मजाक की है, हँसी, तिरस्कार । व्यवहार का तिरस्कार, व्यवहार की हँसी, मशकरी । आहाहा ! अन्तर वस्तु की अपेक्षा से उसमें विधि-निषेध क्या ? इसलिए आलोचना नहीं, विकार नहीं और आत्मा का है, ऐसा भी विधि-निषेध का विकल्प उसमें कहाँ है ? आहाहा ! पर को आलोचकर देखना और फिर उससे निवृत्तना, ऐसा विधि-निषेध स्वरूप में कहाँ है ? स्वरूप तो एकरूप त्रिकाल है । आहाहा !

कहा न ? विधि क्या और निषेध क्या ? इसका अर्थ, व्यवहार आलोचना, यह व्यवहार आलोचना, व्यवहार आचरण, व्यवहार पुण्य, व्यवहार दया, दान, व्रत, व्यवहार... आहाहा ! जितना व्यवहार है, उस सबका उपहास किया है । व्यवहार आलोचना को प्रपंच

गिना है। व्यवहार आलोचना का विकल्प आता है। आहाहा! पाप लगा है तो प्रायश्चित्त ले लो। गुरु को बुलाकर (प्रायश्चित्त ले लो)। वह तो सब विकल्प का प्रपंच उठा है। आहाहा! वस्तुस्वरूप में उस चंचलता का विकल्प है कहाँ, वह उसे छेदे, उसका नाश करे? आहाहा! आलोचना अर्थात् देखे, परन्तु देखे, उसमें है नहीं और क्या देखकर टाले। राग को देखकर टाले परन्तु उसमें नहीं, फिर देखकर क्या टाले? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : एकरूपपना है, आत्मा में तो एकरूपपने देखे।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकरूप ही है। वह तो एक ही है परन्तु इस प्रकार से व्यवहार की आलोचना है, वह विकल्प है। ऐसा पाप लगा हो तो आलोचना करना, प्रायश्चित्त लेना, वह सब व्यवहार का प्रपंच है, कहते हैं। आता है, होता है (परन्तु) है प्रपंच। आहाहा! एक भगवान आत्मा पूर्णानन्द का स्वरूप ही त्रिकाल है। उसमें दृष्टि देने से विधि-निषेध कुछ नहीं होता। आहाहा! अनाकुल आनन्द, उसका जो भण्डार भगवान है, उसमें दृष्टि देने से उसे आलोचना से यह प्रायश्चित्त लेना और उसके दोष लगाये, इसलिए ऐसा लेना, ऐसा प्रपंच उसमें नहीं है। आहाहा! बात कठिन पड़ती है या नहीं? व्यवहार आलोचना को उड़ा दिया। सब व्यवहार को उड़ाया। पूरा व्यवहार प्रपंच है। आहाहा!

इस प्रकार इस पद्य द्वारा परम जिनयोगीश्वर ने वास्तव में... वापस। व्यवहार-आलोचना के प्रपंच का उपहास किया है। वास्तव में मशकरी की है। बहुत क्या व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार... यह व्यवहार कर-करके। विकल्प आ जाता है परन्तु उसमें बहुत रचा-पचा रहे कि आलोचना ली, पश्चात् प्रायश्चित्त हुआ और उसके कारण शुद्ध हुआ, ऐसा कहाँ अन्दर है? विकल्प आया और उसमें प्रायश्चित्त लिया तो शुद्ध हुआ, ऐसा अन्दर कहाँ है? कठिन बात है, भाई! आहाहा! एक ओर व्यवहार प्रायश्चित्त के बड़े ग्रन्थ होते हैं। प्रायश्चित्त के शास्त्र। वे मुनियों ने बनाये हुए; और एक ओर यहाँ कहते हैं कि सब व्यवहार प्रपंच है। यहाँ निश्चय की बात है। वह (व्यवहार) जानने के लिये आता है, उसे व्यवहार से कहते हैं। जानने के लिये आता है और व्यवहार से कहते हैं। आहाहा!

श्लोक-१५६

(पृथ्वी)

जयत्यनघ-चिन्मयं सहज-तत्त्व-मुच्चैरिदं,
विमुक्तसकलेन्द्रियप्रकरजातकोलाहलम् ।
नयानय-निकाय-दूर-मपि योगिनां गोचरं,
सदा शिवमयं परं परम-दूर-मज्ञानिनाम् ॥१५६॥

(वीरछन्द)

जो इन्द्रिय-समूह से होनेवाले कोलाहल से मुक्त ।
दूर रहे नय-नय पुञ्ज से किन्तु योगियों द्वारा गम्य ॥
जो उत्कृष्ट, सदा शिवमय है, अज्ञानी जन को अति दूर ।
है जयवन्त अनघ चिन्मय यह सहज तत्त्व निज रस भरपूर ॥१५६ ॥

[श्लोकार्थः] जो सकल इन्द्रियों के समूह से उत्पन्न होनेवाले कोलाहल से विमुक्त है, जो नय और अनय के समूह से दूर होने पर भी योगियों को गोचर है, जो सदा शिवमय है, उत्कृष्ट है और जो अज्ञानियों को परम दूर है, ऐसा यह 'अनघ-चैतन्यमय सहजतत्त्व अत्यन्त जयवन्त है ॥१५६ ॥

श्लोक -१५६ पर प्रवचन

१५६ श्लोक ।

जयत्यनघ-चिन्मयं सहज-तत्त्व-मुच्चैरिदं,
विमुक्तसकलेन्द्रियप्रकरजातकोलाहलम् ।
नयानय-निकाय-दूर-मपि योगिनां गोचरं,
सदा शिवमयं परं परम-दूर-मज्ञानिनाम् ॥१५६॥

१. अनघ=निर्दोष; मलरहित; शुद्ध ।

आहाहा! [श्लोकार्थः] जो सकल इन्द्रियों के समूह से उत्पन्न होनेवाले कोलाहल से विमुक्त है, ... भगवान आत्मा उसे कहते हैं कि पाँचों ही इन्द्रियों के विषयों की ओर का झुकाव, उसका जो विकल्प-कोलाहल है, उसकी ओर जाते हुए, इन्द्रियों की ओर जाते हुए विकल्प उत्पन्न होता है, उस कोलाहल से तो वह रहित है। आहाहा! सकल इन्द्रियों के समूह से... सब इन्द्रियों के समूह से जो विकल्प उठते हैं। उत्पन्न होनेवाले कोलाहल से... वह कोलाहल है। शान्त वीतरागस्वभाव में विकल्प, वह कोलाहल है। आहाहा! शान्त वीतराग शुद्धस्वभाव की मूर्ति के पास शुभ आदि विकल्प शुभ का वह सब... आहाहा! कोलाहल है। लोग नहीं कहते कि ऐ...! कोलाहल क्या करता है? यहाँ ऐसा कहते हैं कि कोलाहल क्या करता है? चैतन्यतत्त्व के अन्दर में न जाकर विकल्प को उठाकर कोलाहल करता है। आहाहा! ऐसी बात है। दिगम्बर सन्तों की वाणी अन्तर में गहरे ले जाने की है। बाहर से वर्ते, ऐसा नहीं है। आहाहा! है न?

नय और अनय के समूह से दूर होने पर भी... यह नय से ज्ञात हो और यह कुनय है और यह नय है। नय का अधिकार पहले आता है न? बद्ध है और अबद्ध है, ऐसे नय से भी रहित है। ऐसे नय के समूह से दूर होने पर भी... वह नय विकल्पवाला कहना है। निर्विकल्पनय है, वह तो 'निश्चयनयाश्रित मुनिवरो प्राप्ति करे निर्वाण की।' वह निर्विकल्पनय है। आहाहा! विद्वान व्यवहार तजकर निश्चय में वर्ते, तो वह तो धर्म है, परन्तु निश्चय छोड़कर व्यवहार में वर्ते तो वह राग है, विकल्प है। आहाहा!

इस प्रकार यह नय और अनय... नय में विकल्प उठावे तो नय कहलाये विकल्प के साथ। विकल्परहित नय है, वह तो मुक्ति का कारण है, निश्चय। नय और अनय के समूह से... ओहोहो! यह पहले आया था। प्रभु! तुम षट्कारक से भिन्न हो। पर्याय के षट्कारक से भिन्न हो, नय के समूह से भिन्न हो। है न? और ध्यानावली से भी भिन्न हो। आहाहा! तीन बोल आये थे। नय से भिन्न हो, षट्कारक से भिन्न हो और ध्यानावली अन्तर आत्मा की ओर के ध्यान की पर्याय में शुद्धि... शुद्धि... शुद्धि... शुद्धि... शुद्धि... ऐसे बढ़े, ऐसी पर्याय से भी आप भिन्न हो। आहाहा!

प्रभु! आपका नय तो इन्द्रजाल जैसा है, ऐसा कहा है। इन्द्रजाल जैसा है। एक ओर नय से विकल्प कहे तथा एक ओर नय से मोक्ष कहे। अबद्ध हूँ, शुद्ध हूँ, यह विकल्पसहित

की नय, वह बन्ध का कारण है। एक ओर ऐसा कहे २७२ (गाथा समयसार में) कि 'निश्चयनयाश्रित मुनिवरो प्राप्ति करे निर्वाण की।' यह वस्तु। फिर विकल्प नहीं। निश्चयनय का विषय जो आत्मा, उसके आश्रय से मुक्ति होती है। विकल्प-विकल्प नहीं। नय और प्रमाण दोनों विकल्पसहित भी होते हैं, विकल्परहित भी होते हैं। यहाँ विकल्पसहित की बात है।

नय और अनय के समूह से दूर होने पर भी। कहते हैं, भले नय और अनय के समूह से दूर होने पर भी योगियों को गोचर है,... अन्तर्दृष्टि करे, ऐसे योगी। योग अर्थात् जुड़ान। चैतन्यस्वरूप में जुड़ान करनेवाले को वह गम्य है। चैतन्यस्वरूप जो ज्ञायकस्वभाव अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव, उसमें जो अपनी पर्याय को जोड़े तो वह गम्य है। गम्य हो सकता है। जो पर्याय ऐसे (पर की ओर) झुकी हुई है, वह पर्याय वहाँ रखकर दूसरी पर्याय-नयी पर्याय हुई, उसे अन्दर झुकाये। आहाहा! समझ में आया? वह योगियों को गोचर है।

आत्मा अन्दर ज्ञानानन्दस्वरूप शुद्ध ब्रह्मस्वरूप नय और अनय से विरुद्ध है, दूर है, तथापि ज्ञानी को गम्य है। ज्ञानी को गम्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है? समूह कहा है न? समूह अर्थात् सब नय। व्यवहार और निश्चय, सद्भूत और असद्भूत, उपचार और अनुपचार, ये सब नयों के प्रकार हैं न? ये सब नय होने पर भी योगियों को गम्य है, वह तो नय से पार है। आहाहा! यहाँ तो अभी बाहर में शुभराग से, दया, दान, व्रत से पार है, यह बात बैठना कठिन पड़ती है और यह तो अन्दर के नय के विकल्प, अन्दर के विकल्प। आँख बन्द करके बैठे, कान से सुने नहीं और अन्दर में विकल्प करे कि यह अन्दर अबद्ध है, तथापि कहते हैं कि वह नय का समूह है, उससे अगम्य है; उससे गम्य नहीं। आहाहा! योगियों को गम्य है।

जो सदा शिवमय है,... क्योंकि प्रभु स्वयं सदा निरुपद्रव है। शिव—कल्याणस्वरूप ही है। आत्मा तो कल्याणस्वरूप है। आहाहा! सदा शिवमय है,... सदा शिवमय। शिव अर्थात् यह शंकर नहीं, हों! वह तो नमोत्थुणं में आता था न? नमोत्थुणं में नहीं आता? 'सिवमलयमरुयमणंत' तुम्हारे नहीं आता होगा। स्थानकवासी में आता है। नमोत्थुणं। 'सिवमलयमरुयमणंत' नमोत्थुणं, अरिहन्ताणं, भगवन्ताणं, आईगराणं, तित्थराणं...

‘सिवमलयमरुयमणंत’ शिवम् अचलं अरुअमं, ऐसा उसका अर्थ है। स्थानकवासी में सामायिक बोलते हैं। परिपूर्ण करे उसमें बोलते हैं। शिव अर्थात् कल्याणपना। शिव अर्थात् शंकर नहीं। कल्याणस्वरूप है। आहाहा! वह सदा कल्याणस्वरूप है।

और उत्कृष्ट है... उससे - भगवान आत्मा के अतिरिक्त कोई उत्कृष्ट है नहीं। आहाहा! उसके - आत्मा के लिये तो उसका आत्मा ही उत्कृष्ट है, बस! उससे कोई उत्कृष्ट नहीं है। और जो अज्ञानियों को परम दूर है,... वस्तु के स्वरूप को नहीं जाननेवालों को अति दूर है। आहाहा! योगियों को गम्य है। योग—अन्दर जुड़ान करनेवालों को गम्य है, जानने में आता है परन्तु अज्ञानियों को वह अगम्य है। आहाहा! परम दूर है,... राग और पुण्य में वर्तनेवाले, विकल्प में वर्तनेवाले; जो द्रव्य में नहीं है, ऐसी वृत्तियों में वर्तनेवाले को दूर है। विकल्प से दूर है, इसलिए उसका पता नहीं लगता। विकल्पों से दूर है, इसलिए उसका पता नहीं लगता। आहाहा!

ऐसा यह अनघ-चैतन्यमय... आहाहा! अनघ अर्थात् निर्दोष। अघ अर्थात् दोष, अनघ अर्थात् निर्दोष। निर्दोष चैतन्यमय मलरहित; शुद्ध। आहाहा! अकेले आत्मा के गीत गाये हैं। चैतन्यमय सहजतत्त्व... ऐसा जो सहजतत्त्व। स्वाभाविक चीज़ है। करायी हुई नहीं, की हुई नहीं, करे तो रहे - ऐसा नहीं। स्वाभाविक चीज़ अनादि की है। सहजतत्त्व ऐसा आत्मा... आहाहा! अत्यन्त जयवन्त है। आहाहा! दृष्टि में ज्ञात होता है, इसलिए अत्यन्त जयवन्त है। यह तत्त्व-वस्तु अत्यन्त जयवन्त है। जिन्हें-जिन्हें अनुभव हुआ, जिन्हें जिसका ज्ञान और प्रतीति हुई, वह वस्तु जयवन्त है, ऐसा कहते हैं। जिसे ज्ञात नहीं हुआ, उसे तो है कहाँ? है, ऐसा तो कब होता है? कि उसे चीज़ ज्ञात हुई हो, तब वह चीज़ है। नहीं ज्ञात हुई उसे... आहाहा! गधे के सींग जैसा है। अठारहवीं गाथा में आया न? जाना नहीं, उसे गधे के सींग जैसा है। जैसे गधे के सींग नहीं होते; इसी प्रकार उसे भी वस्तु नहीं है। वस्तु क्या है, इसका ज्ञान ही नहीं, इसकी प्रतीति नहीं, उस ओर झुकाव नहीं, वह क्या है—ऐसा जाना नहीं तो उसे किसमें रमना? किसमें स्थिर होना? कहाँ से हटकर कहाँ जाना? आहाहा!

ऐसा अनघ-चैतन्यमय सहजतत्त्व अत्यन्त जयवन्त है। मुनिराज कहते हैं कि वह अत्यन्त जयवन्त है। जयवन्त रहेगा, ऐसा नहीं। अत्यन्त जयवन्त रहेगा, ऐसा नहीं;

जयवन्त है ही। हमारी दृष्टि में वह जयवन्त वर्तता ही है। आहाहा! भगवान् ऐसा महानिर्विकल्प, राग से नहीं पकड़ में आये ऐसा, तथापि हमारे ज्ञानगम्य है, इससे वह जयवन्त वर्तता है। ऐसा तत्त्व जयवन्त है। दृष्टि में आया और अनुभव हुआ, वह वस्तु जयवन्त वर्तती है। आहाहा! जिसे दृष्टि में आया नहीं, उसे जयवन्त वर्तती है, वह जयवन्त वर्तती है, यह श्रद्धा कहाँ से की? त्रिकाल नित्य है, ध्रुव है, ऐसी त्रिकाली सत्ता के अनुभव बिना सहजतत्त्व सनातन है, अत्यन्त जयवन्त है, यह कहाँ से आया? कहते हैं। आहाहा! वाणी, वह वाणी है न!

अत्यन्त जयवन्त वर्तता है। कहते हैं कि यह आत्मा हमें रागरहित, नय-निक्षेप के विकल्प रहित आत्मा अत्यन्त निर्मल और अत्यन्त जयवन्त वर्तता है। जयवन्त वर्तता है, ऐसा भी नहीं कहा। जयवन्त है। भले चाहे जितनी बात की है कि नय से नहीं ज्ञात होता, अमुक से नहीं ज्ञात होता परन्तु हम कहते हैं कि जयवन्त है। आहाहा! चिदानन्द भगवान् पूर्णानन्द से भरपूर प्रभु है। है, उसकी यह व्याख्या होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है, वह अनुभव में आ गया है। उसकी सनातन सत्ता दृष्टि में और ज्ञान में आ गयी है, इसलिए कहते हैं कि वह तो जयवन्त वर्तता है। ध्रुवसत्ता, वह तो जयवन्त अनादि-अनन्त है। यहाँ पर्याय में खबर नहीं थी। वह-वस्तु तो अनादि-अनन्त वर्तता है। आहाहा! पर्याय में चाहे जितनी गड़बड़ करे, परन्तु यहाँ तो पर्याय को अन्दर झुकाया, वहाँ वह जयवन्त वर्तता है, ऐसा दिखायी देता है। आहाहा! यह १५६ श्लोक (पूरा) हुआ।

श्लोक-१५७

(मंदाक्रांता)

शुद्धात्मानं निज-सुखसुधा-वार्धि-मज्जन्त-मेनं,
बुद्ध्वा भव्यः परम-गुरुतः शाश्वतं शं प्रयाति ।
तस्मा-दुच्चै-रह-मपि सदा भावयाम्यत्यपूर्वं,
भेदाभावे किमपि सहजं सिद्धिभूसौख्यशुद्धम् ॥१५७॥

(वीरछन्द)

निज सुखरूप सुधासागर में डूबे निज शुद्धात्म को ।
जान भव्य जन परम गुरु से प्राप्त करें शाश्वत सुख को ॥
अतः अभेद दृष्टि की सिद्धि से उत्पन्न सौख्य से शुद्ध ।
भाऊँ सदा अपूर्व रीति से सहज तत्त्व कोई अद्भुत ॥१५७॥

[श्लोकार्थः] निज सुखरूपी सुधा के सागर में डूबते हुए इस शुद्धात्मा को जानकर भव्य जीव परमगुरु द्वारा शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं; इसलिए, भेद के अभाव की दृष्टि से जो सिद्धि से उत्पन्न होनेवाले सौख्य द्वारा शुद्ध है, ऐसे किसी (अद्भुत) सहजतत्त्व को मैं भी सदा अति-अपूर्व रीति से अत्यन्त भाता हूँ ॥१५७॥

श्लोक -१५७ पर प्रवचन

१५७वाँ (श्लोक) ।

शुद्धात्मानं निज-सुखसुधा-वार्धि-मज्जन्त-मेनं,
बुद्ध्वा भव्यः परम-गुरुतः शाश्वतं शं प्रयाति ।
तस्मा-दुच्चै-रह-मपि सदा भावयाम्यत्यपूर्वं,
भेदाभावे किमपि सहजं सिद्धिभूसौख्यशुद्धम् ॥१५७॥

[श्लोकार्थः] निज सुखरूपी सुधा के सागर में डूबते हुए... आहाहा! निज

आनन्दरूपी सुधा अर्थात् अमृत । निज सुख का अमृतरूपी सागर । अपने सुखरूपी अमृत के सागर में डूबते हुए । इस शुद्धात्मा को जानकर... आहाहा ! यह शुद्धात्मा । भव्य जीव परमगुरु द्वारा शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं;... ऐसा कहकर यह कहते हैं कि गुरु ऐसा उपदेश देते हैं । आत्मा का वीतरागभाव का ही उपदेश देते हैं, बस । है न ? गुरु द्वारा शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं;... इसका अर्थ कि गुरु ने यही कहा था कि अन्तर त्रिकाली चीज आनन्दकन्द है, उस ओर जा । वहाँ तुझे आनन्द होगा । वह सुख का सागर है, अमृत से भरपूर है । ऐसा गुरु ने कहा । गुरु ऐसे होते हैं, यह कहते हैं । इस प्रकार दो बातों की हैं ।

इस शुद्धात्मा को जानकर भव्य जीव परमगुरु द्वारा शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं;... आहाहा ! परमगुरु द्वारा का अर्थ यह है कि गुरु ने उसे ऐसा ही उपदेश दिया था । आत्मा के ध्येय को पकड़े ऐसा । आत्मा के त्रिकाली सनातन को पकड़े ऐसा, शाश्वत् सत्ता को सम्हाले ऐसा । ऐसे उपदेश से उन्हें आत्मतत्त्व मिला । उसके द्वारा शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं;... उसके द्वारा आत्मा शाश्वत् सुख को पाता है । लो । परमगुरु द्वारा आया । निमित्त द्वारा ।

मुमुक्षु : सच्चा लिखते हैं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : किस अपेक्षा से ? उन्होंने ऐसा ही उपदेश किया था, यह बताते हैं । उन्होंने यह उपदेश किया था कि तेरा आत्मा अन्दर भिन्न है । मेरे सन्मुख देखना छोड़ दे और विकल्प छोड़ दे । आहाहा !

मुमुक्षु : ऐसा लिखा नहीं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु द्वारा... का अर्थ यह हुआ क्योंकि गुरु द्वारा शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं;... कहा न ? तब गुरु ने कहा होगा, तब शाश्वत् सुख को प्राप्त हुआ न ? आहाहा ! सुधा के सागर में डूबते हुए इस शुद्धात्मा को जानकर भव्य जीव परमगुरु द्वारा... आहाहा ! परमगुरु ने हमें यह उपदेश किया कि तू भगवान है, परिपूर्ण है । आहाहा ! तेरी सत्ता को कोई अड़चन या आड़ आयी नहीं है । ऐसी विघ्नरहित सनातन चीज है । वह चीज नित्य शाश्वत्, टंकोत्कीर्ण शाश्वत् पड़ी है । ऐसा गुरु ने कहा । उसके द्वारा शाश्वत्

सुख को प्राप्त हुआ। यह कहा था, वह अन्दर प्राप्त हुआ। उन्होंने यह कहा था। क्योंकि गुरु ने कुछ कहा हो और सुख को प्राप्त करे, ऐसा होगा ? आहाहा !

मुमुक्षु : अपना आत्मा ही सद्गुरु है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अलग। अभी वह काम नहीं। यहाँ तो गुरु का उपदेश मिला, उन गुरु का उपदेश कैसा ? आत्मावलोकन में गाथा आती है कि मुनिराज हैं, वे वीतरागभाव की ही बात करते हैं। वीतराग मुहू... मुहू... वीतराग ऐसा पाठ है। मुहू... मुहू... अर्थात् बारम्बार। वीतराग... वीतराग... वीतराग... वीतराग... द्रव्य में वीतराग, गुण में वीतराग, पर्याय में वीतराग... आहाहा ! वही तेरा स्वरूप है। वीतराग के अतिरिक्त राग से लाभ माने और राग करनेयोग्य है—ऐसा कहे, वे गुरु नहीं हैं। कठिन बात है। वे गुरु नहीं हैं। जो गुरु व्यवहार से लाभ मानें—मनावे, वे गुरु नहीं हैं।

यह तो परमगुरु द्वारा... कैसा आत्मा ? कि निज सुखरूपी सुधा के सागर में डूबते हुए इस शुद्धात्मा को जानकर... आहाहा ! निज सुखरूपी सुधा-अमृत, उसके सागर में डूबता - अन्दर प्रविष्ट हो जाता हुआ। आहाहा ! ऐसे शुद्धात्मा को जानकर भव्य जीव... भव्य जीव परमगुरु द्वारा शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं;... आहाहा ! जैन गुरु का ऐसा उपदेश होता है। जिससे मुक्ति मिलती है और मुक्ति का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ऐसा उपदेश है। दूसरा उपदेश उनका नहीं होता। दूसरा उपदेश आवे, वह जानने के लिये है। आदरणीय यही उपदेश है। व्रत का आवे, चरणानुयोग में। यह तो आ गया न ? निर्यापक आचार्य प्रतिक्रमण की रचना की, वह मुनि प्रतिक्रमण करे, परन्तु उसका सफलपना कब ? उसमें से निकलकर निर्विकल्प होवे तब। यह आ गया है। आहाहा ! सन्तों-निर्यापकों ने व्यवहार का प्रतिक्रमण रचा है। वह व्यवहार प्रतिक्रमण करे, तथापि उस व्यवहार का सफलपना कब ? अर्थात् कि उसे छोड़कर अन्दर निश्चय में जाए तो (सफलपना है)। अकेले व्यवहार में रहे तो संसार और बन्धन है। आहाहा !

मुमुक्षु : प्रतिक्रमण को सब छोड़ देना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ देना, विकल्प को छोड़ देना, ऐसी बात है। उसमें कहाँ जरा भी विकल्प है ? यह मेरा है या ये मेरे... स्वयं ही अपना गुरु है, स्वयं ही अपना देव है, स्वयं अपना धर्म है। देव, गुरु और धर्म तीनों आत्मा में है। आहाहा !

परमगुरु द्वारा शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं; इसलिए, भेद के अभाव की दृष्टि से जो सिद्धि से उत्पन्न होनेवाले सौख्य द्वारा शुद्ध है... भेद के अभाव के कारण, भेद नहीं। आहाहा! भेद के अभाव के कारण। भेद के अभाव की दृष्टि अर्थात् अभेददृष्टि। अभेददृष्टि—आत्मा पूर्णानन्द है, ऐसी अभेददृष्टि। जो सिद्धि से उत्पन्न होनेवाले सौख्य द्वारा शुद्ध है... जिससे मुक्ति उत्पन्न होती है, उस सुख द्वारा शुद्ध है। वह भेद के अभाव की दृष्टि से जो सिद्धि से उत्पन्न होनेवाले सौख्य द्वारा शुद्ध है... वह दृष्टि शुद्ध है। आहाहा! जो निर्मल परमात्मस्वरूप स्वयं अन्दर है, उसकी दृष्टि से शुद्ध है। क्यों? कि वह सिद्धि से उत्पन्न होनेवाले सौख्य द्वारा शुद्ध है... आहाहा! उसने भेद के अभाव की दृष्टि की है। भेद की बात नहीं। आहाहा! भेद के अभाव की दृष्टि से जो सिद्धि से उत्पन्न होनेवाले सौख्य द्वारा शुद्ध है। आहाहा! सुख की व्याख्या की है। शुद्ध सुख को प्राप्त करता है, ऐसा कहा न? शाश्वत् सुख को प्राप्त करता है।

इसलिए, भेद के अभाव की दृष्टि से... आहाहा! गुणगुणी का और पर्याय-पर्यायवान का भी भेद जहाँ नहीं है। भले पर्याय स्वयं सम्हालती है, परन्तु सम्हालती है वह अभेद को। स्वयं भेद है, परन्तु अभेद को सम्हालती है। पर्याय ऐसा कहती है कि यह अभेद है, वह मैं हूँ। आहाहा! पर्याय तो सदा होती ही है। पर्याय न हो तो द्रव्य ही न रहे। साधक को निर्मल पर्याय भी सदा होती है। आहाहा! वह पर्याय द्रव्य की ओर जाती है, इसलिए कहते हैं कि वहाँ भेद का अभाव हुआ न? भेदज्ञान किया, वहाँ भेद का अभाव हुआ। भेद नहीं, अब अभेद हुआ। आहाहा!

ऐसी दृष्टि से जो सिद्धि से उत्पन्न होनेवाले सौख्य द्वारा शुद्ध है... कौन सा? वह सुख। परमगुरु द्वारा शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं;... वह सुख। आहाहा! इस शुद्धात्मा को जानकर... ऐसा कहा है न? भव्य जीव परमगुरु द्वारा शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं; इसलिए, भेद के अभाव की दृष्टि से जो सिद्धि से उत्पन्न होनेवाले सौख्य द्वारा शुद्ध है... अतीन्द्रिय आनन्द द्वारा उत्पन्न हुआ, वह शुद्ध है। आहाहा! अकेला उसमें आत्मा जाना और दूसरा कुछ साथ में नहीं आया। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद साथ में आया। अतीन्द्रिय वीर्य आदि अनन्त गुणों की पर्याय आंशिक व्यक्त हो गयी, वह उनके द्वारा शुद्ध सुख है। सिद्ध का सुख शुद्ध है। परमात्मा हुए हैं, उनका सुख शुद्ध है। शुद्ध क्यों है? कि

भेद के अभाव के कारण। सिद्धि से उत्पन्न होनेवाले सौख्य द्वारा शुद्ध है ऐसे किसी (अद्भुत) सहजतत्त्व को... आहाहा! वहाँ ऐसा कहते हैं। ऐसे अर्थात् क्या कहते हैं? वाणी में क्या आवे?

ऐसे किसी (अद्भुत) सहजतत्त्व को मैं भी सदा अति-अपूर्व रीति से... मैं भी। ज्ञायकतत्त्व को, ध्रुवतत्त्व को मैं भी... दूसरे भले आदर करें परन्तु मैं भी सदा अति-अपूर्व रीति से... सदा अति-अपूर्व रीति से। ऐसा। आहाहा! यह मुनिदशा। अन्तर के आनन्दस्वरूप को सदा अति-अपूर्व रीति से अत्यन्त भाता हूँ। वह भी अत्यन्त भाता हूँ। अकेला भाता-भाता हूँ—ऐसा नहीं। आहाहा! मुनि है न! इसलिए अपूर्व रीति से और अत्यन्त (ऐसा कहा है)। आहाहा! अति अपूर्व सदा, जिसमें एक समय का अन्तर नहीं। आहाहा! वह ध्रुव प्रगट हुआ, वह ध्रुव नित्य है, उसकी ओर का स्वाद है, वह नित्य है। कायम है। है भले पर्याय। ऐसे संसार के सुख नहीं परन्तु सिद्धि से उत्पन्न होनेवाले सौख्य... ऐसा। है न? सिद्धि से उत्पन्न होनेवाले सुख, उन द्वारा शुद्ध है।

ऐसे किसी (अद्भुत) सहजतत्त्व को मैं भी सदा अति-अपूर्व रीति से... आहाहा! इन्हें शब्द कम पड़ते हैं। मैं भी सदा अति-अपूर्व रीति से... पूर्व में नहीं की हुई रीति से। आहाहा! ऐसा कहने पर समय-समय की वृद्धि होती है, ऐसा कहते हैं। अपूर्व अर्थात् भले शुद्धि पहले हुई थी, वह भी अति अपूर्व रीति से, पूर्व में नहीं हुई उस रीति से। अर्थात् कि शुद्धि हुई है, उससे शुद्धि बढ़ती है। अर्थात् पहले ऐसे बढ़ती है, वह पहले पूर्व में नहीं थी, ऐसी अपूर्व रीति से। आहाहा! समझ में आया? अध्यात्म की वाणी बहुत सूक्ष्म। परिचय करना चाहिए। ऐसे का ऐसा... बाहर का क्रियाकाण्ड कर-करके मर गया सब। कहीं चले गये। आहाहा! मैं भी सदा अति-अपूर्व रीति से... आहाहा! समय-समय में अपूर्व रीति से, ऐसा कहते हैं। समय-समय में जो पर्याय हुई, उससे दूसरी अपूर्व है। वह पहले नहीं थी। आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें ज्ञान बढ़ता है या मग्नता बढ़ती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थिरता बढ़ती है। ज्ञान बढ़े, न बढ़े—ऐसा नहीं है। स्थिरता बढ़ने की बात है। ज्ञान तो थोड़ा ही हो। पाँच समिति, तीन गुप्ति का ज्ञान। वीतरागता बारहवें गुणस्थान में हो जाए। पाँच समिति, तीन गुप्ति का ज्ञान। स्व-पर के भेदज्ञान का ज्ञान होता

है। शिवभूति अनगार नहीं? शिवभूति अनगार। मा-तुष और मा-रुष, ऐसे शब्द याद नहीं रहे। बहुत मस्तिष्कवाले हैं, इसलिए यह बात बैठ जाए, ऐसी कहीं यह बात नहीं है। अन्दर रुचि और अन्तर्दृष्टिवाले चाहिए। आहाहा! मा-रुष और मा-तुष। गुरु ने कहा। अर्थात् किसी पर सन्तोष नहीं और किसी पर द्वेष नहीं, वीतरागता रखना - ऐसा कहा। याद नहीं रहा। इतने शब्द याद नहीं रहे। भाव था। भाव मुनिपना था, सच्चे मुनि सन्त थे। शब्द याद नहीं थे, इससे क्या है? आहाहा!

मुमुक्षु : अन्तर में ज्ञान की स्पष्टता होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान की स्पष्टता थोड़ी भले हो, अन्दर स्थिरता अधिक होती है। ज्ञान तो जो हो वह हो। यहाँ स्थिरता की बात है। चार ज्ञान और चौदह पूर्वधर हों, तथापि छठवें गुणस्थान में हों। पाँच समिति और तीन गुप्ति का ज्ञान हो, तथापि बारहवें (गुणस्थान में) हों। आहाहा! बात तो ऐसी है, भाई! अन्तर्दृष्टि और स्थिरता, दो की बात है। सम्यग्ज्ञान तो है, वह बीच में है। भले वहाँ थोड़ा हो। यह तो कहा न? मा-रुष और मा-तुष इतना याद नहीं रहा। आहाहा!

मुमुक्षु : अनुभूति में मग्नता हो, तब आत्मा स्पष्ट अधिक होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो आत्मा अनुभव में आता है। उसमें कुछ ज्ञान बढ़ता नहीं। मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। अनुभव के समय ज्ञान बढ़ता नहीं। वह तो है न? लेख है न! ज्ञान तो इतना का इतना होता है, परन्तु अन्दर स्थिरता और आनन्द बढ़ता है। स्थिरता और आनन्द, वह बढ़ता है। मोक्षमार्गप्रकाशक में तो बहुत अधिक बोलों का विस्तार किया है। सत्य को बहुत सादी भाषा में (रखा) है। सातवें अध्याय में है। आहाहा!

अति-अपूर्व रीति से... गजब है! सदा। किसी समय मेरा ध्यान आत्मा में और किसी समय आर्तध्यान में जाए, ऐसा नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा! **सदा अति-अपूर्व रीति से...** पहली पर्याय से दूसरी पर्याय (होती है) परन्तु अपूर्व रीति से। **अत्यन्त भाता हूँ।** यह मोक्ष का मार्ग है। बाकी मोक्ष का मार्ग दूसरा है नहीं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)